
इकाई 1 समाज, संस्कृति और अर्थव्यवस्था*

संरचना

- 1.0 उद्देश्य
- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 अर्थशास्त्र तथा समाज
- 1.3 समाज, संस्कृति तथा अर्थ-व्यवस्था में संबंध
- 1.4 मार्क्स, मेबर, दुर्खीम, सीमेल बैबलेन तथा अन्य विचारकों की आलेख
 - 1.4.1 कार्ल मार्क्स (1818–1883)
 - 1.4.2 मेक्स वेबर (1864–1920)
 - 1.4.3 ऐमाइल दुर्खीम (1858–1917)
 - 1.4.4 जॉर्ज सीमेल (1858–1918)
 - 1.4.5 थॉरस्टीन वेबलेन (1857–1929)
 - 1.4.6 टेलकोट पार्सनस् (1902–1979) तथा नील स्मैल्सर (1930)
- 1.5 आर्थिक विकास : समस्याएं तथा विरोध
- 1.6 वाशिंगटन सहमति
- 1.7 सारांश
- 1.8 संदर्भ
- 1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझने में सक्षम होंगे :-

- अर्थशास्त्र व समाजशास्त्र का सम्बंध;
- समाज, संस्कृति और अर्थव्यवस्था के बीच संबंधों की चर्चा;
- शास्त्रीय विचारकों मुख्य विचार जैसे मार्क्स, वेबर, दुर्खीम, सीमेल वैबलेन तथा अन्य समस्याएं व उनके विरोधों के संदर्भ में आर्थिक विकास तथा संदर्भित विचार; और
- आर्थिक समाजशास्त्र के संदर्भ में वाशिंगटन सहमति पर चर्चा।

1.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम में आर्थिक समाजशास्त्र की पहली इकाई समाज, संस्कृति व अर्थव्यवस्था के बीच सम्बंधों के विवरण तथा व्याख्या से आरंभ होती है। जीवन के ये तीन महत्वपूर्ण पहलू जीवन सांस्कृतिक तथा सामाजिक आपस में कैसे सम्बंधित हैं

* डॉ. सूरज बेरी द्वारा लिखित।

तथा सामाजिक विज्ञान व समाजशास्त्र विभिन्न समाजों में आर्थिक व्यवहार की जटिलताओं पर प्रभाव डालती है।

इस इकाई 'समाज, संस्कृति व अर्थव्यवस्था' में हम सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक परिदृश्यों का परिचय देते हुए सामाजिक परिवर्तनों तथा शास्त्रीय विचारकों व अन्य समाजशास्त्रियों के विचारों को समझाने का प्रयास करेंगे।

विभिन्न समाजों में आर्थिक विकास किस प्रकार घटित हो रहा है तथा उसके कैसी-कैसी समस्याएं सामने आ रही हैं, यह बताया जायेगा। आर्थिक तथा विकासात्मक परिवर्तनों की प्रक्रिया में मौजूद सततताओं पर विचार किया जा चुका है। इस इकाई में सामाजिक परिवर्तनों की प्रकृति पर विचार किया जायेगा जिसका जो 1990 के दशक से समाज में विशेष रूप से देखा जा रहा है। इसी काल खंड में आर्थिक विकास में एक उछाल आया था जिसे वाशिंगटन सहमति कहा जाता है।

1.2 अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र

अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र के सम्बंधों में जैसाकि सामाजिक विज्ञानविद प्रतियोगिता तथा प्रतिस्थापन की प्रवृत्ति के स्थान पर पारस्परिक सहयोग व संपूरकता की प्रवृत्ति अधिक है। आर्थिक परिदृश्य पर सामाजिक दृष्टि को केंद्र में रखते हुए विचार किये जाने की आवश्यकता है। कुछ नये शास्त्रीय अर्थशास्त्री (जैसे पैरेटो) आगाह करते हैं कि आर्थिक परिदृश्यों का विश्लेषण सामाजिक अंतर्दृष्टि के बिना अधूरा है। 19वीं शताब्दी पूर्वार्ध के अनेक शास्त्रीय समाजशास्त्रीय इस बात से अवगत थे कि उनके चारों ओर आर्थिक व सामाजिक दुनिया तेजी बदल रही है। यद्यपि उन दिनों समाजशास्त्र की सही पहचान नहीं मिल पाई थी परन्तु समाजशास्त्रियों को इस बात का पूरा-पूरा ध्यान था कि उनके चारों ओर पूंजीवाद, औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा प्रौद्योगिक विकास तेज गति से हो रहा है और समाज पर उसका प्रभाव पड़ना तय है।

काल मार्क्स तर्क देते हैं कि सामाजिक परिवर्तन और पुनरुत्पादन अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण पहलू हैं। ज्यादा स्पष्टता से कहें तो समाज मूलतः अर्थव्यवस्था के इर्द-गिर्द संगठित होता है तथा सामाजिक वर्गों की संरचना उत्पादन के खास स्वरूप पर निर्भर करती है। जबकि मेक्स बेबर ने आर्थिक संरचनाओं तथा सामाजिक गतिविधियों के बीच संबंधों का अध्ययन किया था। उनका मानना है कि हमारी अर्थव्यवस्थाओं के निर्माण में सांस्कृतिक घटकों की विशेष भूमिका रहती है। आधुनिक पश्चिमी दुनिया में 'पूंजीवाद का उदभव' में प्रतिवादी सोच की अधिक प्रासंगिकता है। एमाइल दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों तथा सामज को सामूहिक चेतना के बीच सम्बंधों का अध्ययन किया था। दुर्खीम आधुनिक समाजों में श्रम विभाजन के विशिष्ट गतिविज्ञान की भी समझना चाहते थे तथा यह भी जानना चाहते थे कि श्रम विभाजन समूहों तथा एक जुटता के निर्माण की व्याख्या किस प्रकार करता है।

वे इस बात को रेखांकित करते हैं कि आधुनिक प्रौद्योगिक के विकास के साथ-साथ समाजों में विविधता और बढ़ी है तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के सामाजिक सामंजस्यों का उदय हुआ है। अर्थव्यवस्था और समाज के ये वर्गीय विश्लेषण आर्थिक समाजशास्त्र की आधारशिलाएं हैं। सामाजिक सिद्धांतकारों ने उभरते औद्योगिक तथा व्यावसायिक

क्रांतियों के साथ ताल-मेल बैठाते हुए सामाजिक महा-परिवर्तन लाने हेतु पारंपरिक-आधुनिक, स्तर-अनुबंध आदि अनेक श्रेणियों की पहचान की है।

अर्थव्यवस्था के विशिष्ट स्वरूप के विकास की व्याख्या करने के लिए शास्त्रीय राजनैतिक अर्थव्यवस्था तथा आर्थिक समाजशास्त्र को साथ लेते हुए मार्क्सवादी अर्थव्यवस्था तथा वर्गीय विश्लेषण सिद्धांत तथा वेबर की संस्थानिक प्रमुखता पर जोर देते हैं।

इसी प्रकार दुर्खीम की संरचना की अवधारणा संरचना के सिद्धांत के विकास में सहयोगी है जिससे बाजार के व्यवहार तथा संस्थानों की रणनीतियों आदि को समझा जा सकता है। बाद के लेखक जैसे पार्सन्स तथा पोलान्थी की भूमिका आर्थिक समाजशास्त्र के क्षेत्र को सही रूप देने के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

19वीं शताब्दी में अर्थशास्त्री प्रमुखतः बाजारों तथा उनकी कार्यप्रणालियों को मूलभूत परिकल्पनाओं की वस्तुपरक व्याख्या करने तथा उनके लिए गणितीय प्रतिमान विकसित करने में लगे रहे। दूसरी ओर, समाजशास्त्री बाजार के व्यवहार तथा गतिविधियों को सामाजिक क्रियाओं का एक रूप मानते रहे तथा अनेक संरचनात्मक घटकों को महत्व देते रहे। सामाजिक परिवर्तन के साथ शास्त्रीय राजनैतिक अर्थव्यवस्था के अनेक अनुमानों तथा आधुनिक सिद्धांतों को भारी चुनौतियों का सामना करना पड़ा जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था तथा समाज के सिद्धांतों में अनेक सुधार हुए।

क्योंकि यह इस पाठ्यक्रम की पहली इकाई है, इसमें आर्थिक समाजशास्त्र की व्यापक रूप रेखा भी प्रस्तुत की जायेगी। अगली इकाइयों में अनेक संबंधित समस्याओं तथा वाद-विवादों पर प्रकाश डाला जायेगा। आइए अब समाज, संस्कृति व अर्थव्यवस्था के संबंधों पर आधारित मूलभूत अवधारणाओं पर विचार करें।

बोध प्रश्न 1

1) अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र में क्या संबंध है? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....
.....
.....
.....
.....

2) किसी एक शास्त्रीय समाजशास्त्री के अर्थशास्त्र पर विचारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए। पांच पंक्तियों में उत्तर दें।

.....
.....
.....
.....
.....

1.3 समाज, संस्कृति तथा अर्थव्यवस्था में सम्बंध

आर्थिक समाजशास्त्र मनुष्यों की प्रकृति को सामाजिक संदर्भ में समझाने के लिए एक विशिष्ट प्रतिमान तो है ही, साथ ही नवशास्त्रीय आर्थिक सिद्धांत की अवधारणा को हल्के से लेने की प्रवृत्ति का सख्त आलोचक है। आर्थिक समाजशास्त्र, आर्थिक एवं सामाजिक परिदृश्यों के बीच संबंधों का अध्ययन करता है तथा उनकी बारीकियों पर अनुसंधान भी करता है। शास्त्रीय आर्थिक सिद्धांत के प्रेरक एडम स्मिथ मानव प्रकृति तथा व्यवहार की स्थिरता की अवधारणा पर महत्वपूर्ण काम किया है।

यह भी माना जाता है कि मनुष्य बौद्धिक प्राणी हैं और बाजार से वे जो खरीदते हैं, वह उत्पाद को उपयोगिता के आधार पर खरीदते हैं। समाजशास्त्री यह मानते हैं मनुष्यों के कार्यों के पीछे सामाजिक व सांस्कृतिक संदर्भ होते हैं। अंतः उनके सामाजिक कार्यों के पीछे सांस्कृतिक विविधताएं भी होती हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके कार्यों के बीच तुलना नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए मेक्स वेबर कहते हैं कि किसी भी सामाजिक कार्य की मुख्यतः तीन सामाजिक तरीकों से व्याख्या की जा सकती है – परंपरा, प्रभाव तथा तर्कसंगतता व वैधानिकता (वेबर, 1978)।

पियरे बॉर्द्यू का तर्क है कि व्यक्ति की इच्छा न केवल नैतिक मानदंडों से बंधे होते हैं, जैसा कि कांत कहते हैं, वे सामाजिक स्थितियों-परिस्थितियों से अधिक प्रभावित होते हैं।

बाक्स 1.0 : पारंपरिक नगरीय अर्थव्यवस्था

प्राचीन काल

नगरीय अर्थव्यवस्था भारतीय अर्थव्यवस्था की युगों से ही अनिवार्य अंग है। भारतीय प्राचीन सभ्यता, जैसे सिंधु घाटी सभ्यता (2600 ईसा पूर्व से 1500 ईसा पूर्व) भारत की सुविकसित नगरीय सभ्यता मानी जाती है जिसका व्यापक ग्रामीण कृषि प्रधान आधार था। पुरातात्विक खुदाई से पता लगा है कि भारत के अनेक नगर तथा महानगर सिंधु घाटी सभ्यता से गुलजार थे। जैसे हड़प्पा तथा मोहनजोदारो (जो अब पाकिस्तान में है) लोथल, कालीबंगान, बनवाली (भारत)।

ऋग्वेद काल का (1500 ईसा पूर्व से 1000 ईसा पूर्व) आरंभिक चरण नगरीय सभ्यता से अलग थलग जाना जाता है। ऋग्वेद काल के बाद के वर्षों में अर्ध-घूमंतु सभ्यता थी और लोगों का जीवन देहाती था। (1000 ईसा पूर्व से 600 ईसा पूर्व) तक आते आते लोग गांवों में बस गये थे और खेती उनका एक मात्र व्यवसाय बन गई थी। समकालीन साहित्य में 60 कस्बों का विवरण प्राप्त होता है, जिनमें राजगृह, पाटलीपुत्र, श्रावस्ती, कौशाम्बी, वाराणसी आदि प्रमुख थे। कस्बों और नगरों का लगातार विकास होता गया। मौर्य काल तथा उसके बाद की अवधि में गुप्त साम्राज्य के दौरान भी विकास का यह क्रम जारी रहा। गुप्त साम्राज्य के बाद के काल में देश में नगरीय क्षरण का दौर आया। नौवीं शताब्दी के बाद इस प्रवृत्ति में बदलाव आया। आइए, इस अवधि की नगरीय अर्थव्यवस्था के कुछ पहलुओं पर, व्यापार, वाणिज्य, कला तथा शिल्प पर, गिल्ड प्रणाली तथा सामाजिक वर्गों पर विचार किया जाये।

i) **व्यापार व वाणिज्य** — जैसा कि हम जानते हैं, गैर-कृषि आधारित व्यवसाय नगरीय अर्थव्यवस्था में प्रमुख स्थान रखते हैं। व्यापार व वाणिज्य महत्वपूर्ण गतिविधियां हैं। बाह्य तथा आंतरिक व्यापार का विवरण प्राचीन काल में समकालीन साहित्य में तथा पुरातात्विक अवशेषों में पाया जाता है। व्यापार तथा वाणिज्य उत्थान व पतन का विवरण दोनों कालों में पाया जाता है।

प्राचीन भारत में भी कस्बों तथा नगरों की ऐसी ही स्थिति थी। नगरीय व्यापारी नगरों के उत्पादों तथा कृषि उत्पादों का आंतरिक व्यापार करते थे। बुद्ध काल तक धातु के सिक्कों का चलन आरंभ हो गया था जिससे आर्थिक लेन-देन को प्रोत्साहन मिला। अब बाहरी क्षेत्र में भी व्यापार दूर-दूर तक होने लगा। रोम, अरब देश, पर्सिया, चीन तथा दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में भारत के लोग व्यापार करने लगे। विदेशी व्यापार में विलासिता की सामग्री प्रमुख रूप से शामिल थी। इनमें शिल्प, हाथ के बने सुन्दर वस्त्र, नगरीय अर्थव्यवस्था की सामग्री, हाथी दांत के समान, बर्तन आदि शामिल थे। विदेशी व्यापार भारत के हित में था। रोमन लेखक प्लिनी ने इस बात पर अफसोस जाहिर किया था कि रोम का सोना भारत के साथ व्यापार में भारत पहुँच रहा था (शर्मा 1983-144)।

ii) **कला एवं शिल्प** — प्राचीन भारतीय नगरीय अर्थव्यवस्था का एक अन्य पहलू था जिसके कारण विभिन्न कला एवं शिल्प से जुड़े लोगों का जीवन यापन चलता था। इसमें लकड़ी का काम, कारीगरों का लुहारों का काम, चमड़े का काम, मिट्टी के बर्तन, हाथी दांत का काम, जुलाहों, चित्रकारों आदि के काम शामिल थे।

iii) **गिल्ड प्रणाली** — नगरीय अर्थव्यवस्था में गिल्ड प्रणाली (श्रेणी पद्धति) का बड़ा योगदान था। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में जजमानी पद्धति के विपरीत नगरीय शिल्पकार तथा व्यापारी शिल्प तथा व्यापार की श्रेणियां बनाकर काम करते थे। खास श्रेणी के सदस्य अपनी श्रेणी के शिल्प से व्यापार से ही जुड़ते थे। जैसे कुंभकारों की श्रेणी, लुहारों, जुलाहों तथा हाथी दांत के कारीगरों की अलग-अलग श्रेणियां थी। उत्पादन में श्रेणी पद्धति का विशेष योगदान था। जन रुचियों को पैदा करने में भी इनका भारी योगदान था। (थापर 1976 : 109) एक श्रेणी से शिल्पकारों की बड़ी संख्या जुड़ी होती थी। इन निकायों के अंतर्गत काम करने में उनके कामों को सुरक्षा मिलती थी। प्रतिस्पर्धा तथा सामाजिक स्तरीकरण की दृष्टि से अपनी-अपनी श्रेणी में कारीगर या शिल्पकार सुरक्षित महसूस करते थे। श्रेणियों में काम करने के अपने नियम थे, आचार संहिताएं थीं, उनके कामों की उत्पादों की गुणवत्ता का अपना विशेष स्थान होता था। यहाँ तक कि इसकी कीमतें भी पूर्व निर्धारित होती थी जिससे शिल्पकार व उपभोक्ता दोनों को सुविधा रहती थी। दोनों पक्ष मिलकर उत्पादों की कीमतें तय करते थे।

अनेक विभिन्न श्रेणियों से जुड़े लोग कस्बों व नगरों के विभिन्न भागों में रहते थे। कस्बों व नगरों के ये मुहल्ले इनकी श्रेणियों से जाने जाते थे, जैसे दर्जियां, सुनारों या लुहारों पर मुहल्ला या गली। श्रेणियों के मुखियों को भोजका कहा जाता था। वरिष्ठ सदस्यों की एक छोटी परिषद होती थी और भोजका परिषद के मुखिया होते थे। श्रेणियों की परिषद के वरिष्ठ सदस्य श्रेणी न्यायालयों का नियंत्रण करते थे। श्रेणी धर्म के अनुसार न्यायालय चलाये जाते थे। श्रेणियों के नेता नगरीय जीवन में बड़ी हैसियत वाले लोग माने जाते थे। शासक उनका सम्मान करते थे।

मजदूरों के भी निकाय होते थे जो श्रमिकों के हितों का ध्यान रखते थे। इनमें एक तरह के निकायों की प्यूगा कहा जाता है। इसके सदस्य कारीगर तथा अनेक प्रकार के शिल्पकार होते थे जो खास उद्यम-घरानों से संबंधित होते थे। जैसे नगरों का निर्माण करने वाले, मंदिरों का निर्माण करने सहकारी कर्मियों द्वारा किया जाता था। जिनमें विशेष प्रकार के कुशल श्रमिक होते थे जैसे शिल्पकार व इंजीनियर आदि।

इसके अलावा श्रेणियां बैंक, वित्त प्रबंधन तथा ट्रस्ट की भूमिका भी निभाती थीं। लोग श्रेणियों में अपना धन जमा रखते थे और ब्याज पाते थे। पैसा जमा करने वाले लोग प्रायः व्यापारी होते थे इन्हें श्रेष्ठी नस या साहूकार कहा जाता था (थापर 1987 : 112)।

संदर्भ — ईएसओ 12 : भारत में समाज; इकाई 11: नगरीय अर्थव्यवस्था, पृष्ठ : 28।

1.4 मार्क्स, वेबर, दुर्खीम, सीमेल वैंबलेन तथा अन्य विचारकों के आलेख

समाज के आर्थिक व सामाजिक जीवन के गतिविज्ञान की व्याख्या करने वाली विविध परम्पराएं समाज में विद्यमान हैं। आर्थिक समाजशास्त्र की आरंभिक विचारधाराओं को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है – उत्पादन के स्वरूपों की व्याख्या करने वाली कार्ल मार्क्स की वर्गीय विभाजन वाली विचारधारा। यह विचारधारा व्यापक सामाजिक संरचना गतिविज्ञान की व्याख्या करती है जिसके अनुसार सम्बंध भौतिक उपलब्धियों के इर्द-गिर्द निर्मित होते हैं। वर्ग विभाजन, किरायेदारी व लाभ-प्राप्ति का उत्पादन, आर्थिक विविधताएं तथा सामाजिक सांस्कृतिक ढांचे पर पूंजीवादी संरचना का प्रभाव। संगठनों व संस्थानों के अध्ययन पर वेबर जोर देते हैं। यह संस्थानों तथा सामाजिक कर्ताओं जैसे राज्य, सामाजिक वर्गों आदि के बीच पारस्परिक संबंधों का विश्लेषण करता है। औद्योगिक रुचियों तथा कृषि सरोकारों के बीच अंतर की व्याख्या करता है।

आर्थिक समाजशास्त्र की दूसरी विचारधारा अभिजात वर्ग के अध्ययन को केंद्र रखती है। अभिजात वर्ग के लोगों के आपस में सम्बंधों तथा सामाजिक संसाधनों पर उनकी एकाधिपत्यता का विवरण प्रस्तुत करती है। अभिजात वर्गों के लोग सामाजिक व राजनैतिक नेताओं से किस प्रकार सम्बंध स्थापित करते हैं तथा इन सम्बंधों के आधार पर किस प्रकार राष्ट्रीय नीतियों तथा व्यापार में बढ़त हासिल करते हैं। तीसरी विचारधारा संस्थागत विचारधारा है। दुर्खीम के अनुसार इस विचारधारा के अनुयायी विश्वासों, सामाजिक मिथकों, विचारों अर्थव्यवस्थाओं की सामाजिक संरचना आदि का अध्ययन इस विधि से करते हैं। आर्थिक समाजशास्त्र अपनी निजी पहचान स्थापित करने में बहुत सुस्त रहा है, इसलिए वह समाजशास्त्र से अलग एक स्वतंत्र विचारधारा के रूप में स्वयं को स्थापित नहीं कर पाया है।

1.4.1 कार्ल मार्क्स (1818–1883)

अब हम आर्थिक समाजशास्त्र की बौद्धिक व्याख्याओं की ओर रुख करते हैं। कार्ल मार्क्स के लेख आर्थिक समाजशास्त्र से जुड़े प्रमुख प्रश्न उठाता है। उनके अनुसार मानव समाज का सबसे महत्वपूर्ण घटक श्रमिक है। अन्य सभी गतिविधियाँ मजदूर के इर्द-गिर्द घटित होती हैं। अपनी प्रमुख पुस्तक 'कैपिटल' में कार्ल मार्क्स ने इस बात

के लिए शास्त्रीय अर्थशास्त्रियों की आलोचना की है कि उन्होंने मालिक और मजदूर के बीच मौजूद टकराव का पर्याप्त वर्णन नहीं किया। कार्ल मार्क्स ने मूलभूत पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के मौलिक संस्थानों में मौजूद सामाजिक विसंगतियों पर विशेष जोर दिया है। दूसरे शब्दों में उसने उत्पादन के संसाधनों पर कब्जा किये बैठे पूंजीपतियों तथा मजदूरी पर गुजारा करने वाले श्रमिकों के सवाल पर विशेष रूप से जोर दिया है। जो वस्तुओं के उत्पादन तथा आय के बंटवारे से सीधा जुड़ा है। कार्ल मार्क्स की दृष्टि जर्मन दार्शनिक हीगल से प्रभावित थी जो वर्ग निर्माण तथा सामाजिक रूपांतरण के लिए द्वंदात्मक स्थिति को जिम्मेदार मानता है। पूंजीवाद समाज को सुस्पष्ट वर्गों में बांटता है तथा मालिक व मजदूर या अमीर व गरीब के बीच टकराव की स्थिति को जन्म देता और उसे बनाये रखता है। इससे जो प्रगतिवादी संघर्ष जन्म लेता है पुरानी आर्थिक संरचना को उखाड़ फेंकने का इरादा रखता है। मजदूरों का निरंतर शोषण करते हुए मालिकों के मुनाफे को बढ़ाते चले जाने की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की प्रवृत्ति पूंजीवाद की जड़ों को गहराती चली जाती है। अपनी पुस्तक कैपिटल (1867-94) में राजनैतिक अर्थव्यवस्था की आलोचना के पीछे कार्ल मार्क्स पूर्वाग्रही लगता है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के संस्थानों पर निजी आधिपत्य बनाये रखना तब संभव नहीं हो सकता है जब पूंजीपति को लाभ न मिल पा रहा है। परन्तु लाभ आखिर आता कहां से है? जब एक मजदूर उत्पादन की प्रक्रिया में जुटता है तब वह उत्पादों को उस वेतन से कहीं ज्यादा मूल्यवान बना देता है जितना वह मालिक से प्राप्त करता है। श्रमिक का पगार से अधिक काम करके देना। कम वेतन लेने और अधिक मूल्य का काम करके देने के बीच जो अंतर होता है, वहीं पूंजीपति के लाभ का स्रोत निर्मित करता है। फिर भी प्रतियोगिता की स्थिति में निजी तौर पर पूंजीपति उद्यमी और अधिक स्थिर पूंजी लगा कर नई मशीनें शामिल कर लेते हैं तथा काम पर आवश्यकता से कम मजदूर लगाते हैं। इस प्रकार वे श्रमिकों पर तुलनात्मक रूप से कम खर्च करते हुए अपेक्षाकृत अधिक मुनाफा कमाने लगता है। जब तक अन्य पूंजीपति उनकी प्रतियोगिता में उसी तरह का नवीनीकरण नहीं कर लेते। इसके मुख्यतः दो परिणाम होते हैं – पहला, यह कि इससे बेरोजगारी की स्थिति पैदा हो जाती है और श्रमिक वर्ग के जीवन स्तर में गिरावट आ जाती है। दूसरा, यह कि अंततः मुनाफे की दर में गिरावट आने लगती है और उत्पादन में उछाल कम हो जाता है। मार्क्स की दृष्टि में मुनाफा मजदूर के शोषण पर निर्भर करता है। अपने ऐतिहासिक विश्लेषण के आधार पर मार्क्स का मानना है कि वर्गीय संरचना में तथा सांस्कृतिक व राजनैतिक चेतना तथा सामाजिक वर्गों की गतिविधियों में भेद उत्पन्न हो जाता है। (1850 में फ्रांस की क्रांति तथा एट्टीन्थ ब्रूमेयर ऑफ लुइस बोनापार्ट, 1852 इसके स्टीक उदाहरण हैं)। कार्ल मार्क्स का यह भी विश्वास था कि श्रेष्ठ शास्त्रीय अर्थशास्त्रियों की विरासत स्थापित हो जाने के बाद बाजारी प्रतिस्पर्धा के कारण उत्पादन शैली पूंजीवादी होती चली गई और विभिन्न देशों के बीच मतभेदों में कमी आई।

1.4.2 मेक्स वेबर (1864-1920)

1890 के आरंभिक दशकों के दौरान मेक्स वेबर के शोध ने आर्थिक समाजशास्त्र के बारे में महत्वपूर्ण सैद्धांतिक सवाल खड़े किये, साथ ही उस महत्वपूर्ण भूमिका की ओर ध्यान आकर्षित किया जो आर्थिक व्यवहार को समझने के लिए गैर-आर्थिक सांस्कृतिक तथा संस्थागत स्थितियों ने निभाई थी। मेक्स वेबर के शोध 'द प्रोटैस्टेंट एथिक एण्ड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म' को आधुनिक पूंजीवाद के उद्भव के सिद्धांत

की आधारभूत उद्घोषणा के रूप में स्वीकार किया गया। अपने शोध में मेक्स वेबर ने यह प्रश्न उठाया पूंजीवाद उसी में से क्यों उभरा जहां यह उत्पन्न हुआ था।

मेक्स वेबर ने दावा किया कि अनेक समकालीन अर्थशास्त्री उन सामाजिक व सांस्कृतिक संदर्भों के समझ नहीं पाये जिनमें पूंजीवाद का जन्म हुआ था। उन्होंने अनेक सभ्यताओं के सांस्कृतिक मूल्यों का पता लगाया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कट्टरता की सोच ने काल्विनवाद को जन्म दिया जिसने पूंजीवादी विचारों की संरचना की। उनके अनुसार पूर्वनिर्धारण के सिद्धांत ने अनेक लोगों को आर्थिक संपन्नता के मामलों में 'चयनित होने' के चिन्ह के संदर्भ में देखा जा सकता है।

इसके पश्चात अनेक लोग अपने जीवन में मिले कार्यों को अपनी नियति के रूप में स्वीकार करने लगे। काल्विनवाद के सिद्धांतों का पालन करते हुए मेहनत करना, निवेश करना तथा मुनाफा कमाना या बचत करना आदि को लोग सफलता के घटकों के रूप में स्वीकार करने लगे और महत्वपूर्ण बनने के रास्ते तैयार करने लगे। उदाहरण के लिए जो कठोर परिश्रम करते थे उन्हें पवित्र, ईमानदार तथा ईश्वरीय पक्ष के मानने वाले समझा जाने लगा। परिणामस्वरूप काम लोगों के लिए एक महत्वपूर्ण तथा कम खर्चीला होने के कारण ऊँचे आर्थिक स्तर का प्रतीक बन गया।

यद्यपि पूंजीवादी भावना अब केवल मुनाफा कमाने के बहाने तलाशने वाली मनोवृत्ति मात्र नहीं रह गई, बल्कि पूंजी के उत्पादन बढ़ाने वाले मामलों में उपयोग करने वाली मानसिकता के रूप में आदर पाने लगी। विलासिता तथा निजी सुख की सामग्री जुटाने को उस पर जो ठप्पा लगा था, वह हट गया। इस प्रकार वे तर्क देते हैं कि यह तर्क पूंजीवाद के अभ्युदय की आधारशिला बन गया। मेक्स वेबर के शोध के बारे में मजेदार तर्क दिया जाता है कि इसने यूरोप के सांस्कृतिक संदर्भ तथा पूंजीवादी उद्यमता के संरचनात्मक विकास को ऐतिहासिक जटिलता में उलझा दिया है। उन्होंने सुझाव दिया कि उद्यमपरक गतिविधियों को सदा एक सी बनी रहने वाली न माना जाय, बल्कि गतिशील तथा उन संस्थागत संदर्भों पर आधारित माना जाये जिनकी स्थापना इससे जुड़े लोग करना चाहते हैं।

उनका विश्वास था कि उत्पादन के लिए तथा लाभ व वित्त के सशक्तीकरण के लिए उपयुक्त संस्थागत संरचना का होना अनिवार्य है। यदि ये व्यवस्थाएं उद्यमपरकता की वृद्धि में सहयोगी होंगी केवल तब ही आर्थिक विकास की गारंटी दी जा सकती है। मेक्स वेबर के जर्मन समाज पर किये गये शोध में उद्यमता की खोज ने उसे पूंजीवाद के उद्गमों से जुड़ी वृहत सामाजिक समस्याओं पर विचार करने तथा इसके क्षेत्रीय विकास के लिए उपयुक्त धरातलों को तलाशने के लिए विवश कर दिया। इस काम में उन्हें लम्बा समय लगा। मेक्स वेबर ने अपने वर्ग सूत्र का उपयोग आर्थिक समाजशास्त्र के विकास में योगदान देने के लिए भी किया। उनका मानना था कि यदि अनुभवजन्य वास्तविकताओं पर 'आदर्श प्रारूप' न चढ़ने दिया तो अनुभव के वास्तविक अस्तित्व तक पहुंचा जा सकता है। समाजशास्त्र के स्वरूप निर्धारण के संदर्भ में उसके निष्कर्षों की यह विशेषता विशेष महत्व रखती है।

1.4.3 ऐमाइल दुर्खीम (1858–1917)

दुर्खीम का विचार था कि आर्थिक घटक सामाजिक गतिविधियों पर निर्भर होते हैं, क्योंकि ये सामाजिक संस्थानों, रूझानों तथा मूल्यों पर, सामाजिक निर्भरता के सिद्धांतों पर आधारित होते हैं। ऐसे विचारों ने आर्थिक सिद्धांत तथा शोध के अंगों को विशेष

रूप से प्रभावित किया है। अतः आधुनिक आर्थिक समाजशास्त्री दुर्खीम को आर्थिक समाजशास्त्र का जनक मानते हैं। दुर्खीम और वेबर दोनों ने आर्थिक समाजशास्त्र को स्वतंत्र विज्ञान के रूप में स्थापित करने के लिए बहुत प्रयास किए परन्तु वे असफल रहे। दुर्खीम ने वेबर से अलग हट कर अर्थशास्त्रियों की इस बात के लिए आलोचना की थी कि वे अर्थशास्त्र को सामाजिक पक्षों से अलग रखने का प्रयास करते रहते हैं। दुर्खीम ने औद्योगिक समाजों के उद्भव का गहराई से अध्ययन किया था तथा सामुदायिक जीवनो में आने वाले परिवर्तनों की समाजशास्त्रीय व्याख्याएं की थीं। दुर्खीम का जीवन समाजशास्त्र के लिए समर्पित था। अपनी पुस्तक 'द डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी' में दुर्खीम ने दावा किया है कि प्रौद्योगिकी के विकास तथा नगरीकरण के विस्तार के कारण अनेक प्रकार के प्रभाव एक साथ आये हैं और इससे अनेक प्रकार के बदलाव देखने को मिले हैं। उनके सामाजिक सम्पर्क के ढंग अलग-अलग हैं। कुछ लोग विशेष प्रकार के कौशल अर्जित करने में लगे हैं। औद्योगिक युग आरम्भ होने से पहले सभी प्रकार के कार्यों में लगना सम्भव नहीं था। औद्योगीकरण तथा नगरीकरण के परिणामस्वरूप लोग खास प्रकार के कामों में जुटे और एक दूसरे पर उनकी निर्भरता में वृद्धि हुई। इससे सामाजिक विविधताओं तथा भेद-भावों में भी वृद्धि हुई है और आधुनिक समाज में जैविक एकजुटता उत्पन्न हुई है। श्रम विभाजन के नये रूपों के सामने आने के कारण तथा सामाजिक संरचना के अधिक जटिल हो जाने के कारण समाज में भारी बदलाव दिखने लगे हैं।

इस प्रकार, दुर्खीम ने महत्वपूर्ण उपयोगी अर्थशास्त्री उत्पन्न किये जो मानव समाज की सामान्य प्रकृति की तर्कसंगतता का राग अलपाते थे। आधुनिक औद्योगिक समाज में कानूनों के मामले में भारी परिवर्तन देखने को मिला। पहले के विरोधी कानूनों के स्थान पर प्रतिबंधात्मक कानूनों की मांग हुई। लचीले दंड विधान, जैसे जुर्माने को कारावास की तुलना में अधिक पसंद किया गया। समाज में लोग व्यक्तिवाद के दौर से गुजरे – खपत, सोच तथा मूल्यों पर व्यक्तिवाद का प्रभाव देखने को मिला। दुर्खीम का पहला महत्वपूर्ण योगदान यह था कि उन्होंने अर्थशास्त्रियों के व्यक्तिगत कार्य के सिद्धांत की आलोचना की और उसके स्थान पर संस्थागत सिद्धांत पर जोर दिया। मौलिक दृष्टि से दुर्खीम का सबसे महत्वपूर्ण तर्क यह था कि आधुनिक समाजों में आर्थिक गतिविधियों का संगठन सामाजिक रूप से विघटनकारी था क्योंकि इसमें श्रम विभाजन का स्वरूप असामान्य हो गया।

इसके बाद दुर्खीम, हालांकि उन्होंने नये विषयों में रुचि लेना आरंभ कर दिया था। व्यक्तियों का वास्तविक आर्थिक व्यवहार नैतिक मान्यताओं व नियमों से प्रभावित होता गया। समाज के बदलते स्वरूप के साथ-साथ नैतिक मान्यताएं व नियम भी बदलते गये। इन संस्थागत घटकों ने आर्थिक विकास को प्रभावित किया तथा आर्थिक विकास के अनुसार उनमें भी बदलाव आया।

परंपरागत व्याख्याओं के अनुसार अर्थशास्त्रियों में मान्य श्रम विभाजन पर व्यक्तिगत कार्यों का विशेष प्रभाव पड़ा। क्योंकि इससे उन्हें लाभ हुआ। दुर्खीम ने पाया कि उसका तर्क अस्थिर था क्योंकि एक भी व्यक्ति आसानी से अधिक उत्पादन के लाभों और हित साधन की सम्भावनाओं को न समझ सकता था, न उनकी कल्पना कर सकता था। दुर्खीम के अनुसार श्रम विभाजन के कारणों को एक अलग सामाजिक स्रोत में तलाशा जा सकता था। सामाजिक संरचना की विविधताएं तथा सामाजिक संबंधों की प्रकृति में इसका समाधान तलाशना जरूरी हो गया था। लोगों को आपस

में जोड़ने तथा उनके एकजुटता के तौर-तरीकों में श्रमि विभाजन के आयाम व स्वरूप निहित हो गए।

1.4.4 जार्ज सीमेल (1858–1918)

सीमेल ने अपनी पुस्तक 'द फिलोसफी ऑफ मनी' (1900) में लिखा है – समकालीन पूंजीवादी समाज में पैसा एक बड़ा संस्थान है। सीमेल के अनुसार आधुनिक समाज में पैसा लोगों के बीच सम्बंधों के निर्माण व निर्वहन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पैसे के इस्तेमाल अथवा पैसे की अर्थव्यवस्था के इस्तेमाल के उद्भव तथा परिणामों को स्पष्ट करने के उद्देश्य से आधुनिक समाज को समझना आवश्यक है। सीमेल के लिए पूंजीवाद एक विशेष आर्थिक प्रणाली है जिसमें वस्तुओं का उत्पादन एवं वितरण मुद्रा आधारित अर्थव्यवस्था का परिणाम होता है। इसलिए उन्होंने पूंजीवाद की संस्थागत आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान दिया। वे पूंजी आधारित अर्थव्यवस्था में सामाजिक परिणामों पर सहमत थे जैसे सामाजिक सम्बंधों तथा जीवन शैलियों में तर्कसंगतता तथा निव्यक्तिगतता का बढ़ना। सीमेल के अनुसार पूंजीवाद एक आर्थिक प्रणाली है जिसमें पूंजी का निजी हाथों में इकट्ठा होना अपेक्षित है। इस अर्थव्यवस्था में पूंजी पर धन का इस्तेमाल व्यापक रूप से होता है। धन को आदान-प्रदान के उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। धन आधारित अर्थव्यवस्था में इससे जुड़े लोगों का कार्य क्षेत्र व्यापक हो जाता है। आर्थिक गतिविधियों में धन को संचालन शक्ति के रूप में इस्तेमाल करने के लिए एक आधारभूत गैर-आर्थिक पूर्ति जुड़ी होती है। धन को किसी समय उत्पादों में बदल देने की जो क्षमता धन में मौजूद रहती है, उसमें विश्वास रखना। धन इकट्ठा करने के पीछे उस विश्वास का अटूट होना जरूरी है जो एक सांस्कृतिक स्थिति से उत्पन्न होता है जिसे संस्थागत घटकों का सहयोग प्राप्त है, जिसकी वैधता तथा राजनैतिक शक्ति द्वारा संरक्षण की स्थिति बनी रहती है तथा जिसे कानूनी व्यवस्था द्वारा गारंटी दी जाती है।

इस अर्थ में धन एक सार्वजनिक संस्थान बन जाता है। सीमेल ने इस बात को रेखांकित किया है कि धन आधारित अर्थव्यवस्था एक शक्तिशाली घटक है। प्राकृतिक अर्थव्यवस्था के विघटन की स्थिति में आत्म-उपभोग के लिए उत्पादन संभावना इसमें धन आधारित अर्थव्यवस्था में अंतर्निहित होती है। इस प्रकार इस अर्थव्यवस्था से केंद्रीभूत अवस्था का निर्माण होता है जो धन पर नियंत्रण रखने के मौलिक कार्य को पूरा करती है।

इस प्रकार आधुनिक राज्य व्यवस्था कराधान द्वारा संचालित होती है जिसमें नौकरशाही तथा सैन्य बलों को सुव्यवस्थित रखने की केन्द्रीभूत शक्ति निहित होती है। व्यवस्था के इस उपकरण में पुरानी सामंती प्रणाली निर्जीव हो जाती है तथा धन आधारित अर्थव्यवस्था की जड़ें मजबूत हो जाती है जो बाजारों के विकास की गारंटी देती है। सामाजिक सम्बंधों तथा जीवन जीने के तरीकों को सुनिश्चित करने में धन आधारित अर्थव्यवस्था की भूमिका के परिणामों की समीक्षा करना सीमेल के विचारों के केंद्र में रहा। धन से व्यक्तिगत स्वतंत्रता में वृद्धि हुई है क्योंकि इसने सामाजिक संबंधों को आदान-प्रदान के क्षेत्रों तथा उत्पादों को उपभोक्ताओं तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उत्पादनों को विभिन्न वितरकों तक पहुंचाना तथा विक्रेता व खरीददार के बीच सम्बंधों को विकसित करना तथा दोनों को महत्व प्रदान करना तथा चयन की स्वाधीनता प्रदान करना। धन के माध्यम से ही संभव हो सका है। इसके अलावा आर्थिक सहयोगी तलाशने की पूरी स्वतंत्रता के साथ-साथ वस्तुओं को चुनने की

आजादी के कारण आदान-प्रदान की पुरानी प्रथाओं की संकीर्णताएं ध्वस्त हुई हैं। परिणामस्वरूप अपनी रुचि की वस्तुओं का चुनाव करना बहुत सरल हो गया है। उत्पादन के क्षेत्र में भी इस परिवर्तन से चयन की सुविधा बढ़ी है। खपत में वृद्धि हुई है पहले जो उत्पादन की खपत के लिए मालिक पर निर्भरता रहती थी। धन आधारित व्यवस्था में मालिक और मजदूर दोनों से ही पूरी तरह स्वतंत्र बाजार व्यवस्था के विकसित हो जाने से खपत की पूरी आजादी प्राप्त हो गई है। व्यक्तिपरकता के चंगुल से सम्बंधों को बाहर निकाल लाने की धन के क्षमता के कारण धन अब पूरी तरह सार्वजनिक संस्थान के रूप में स्थापित हो गया है।

गतिविधि 1

पांच मित्रों का साक्षात्कार कीजिए। धन के महत्व को साक्षात्कार का विषय बनाइए तथा जीवन में धन के सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक मूल्य पर चर्चा कीजिए।

‘धन के सामाजिक महत्व’ पर एक निबंध लिखिए तथा अपने अध्ययन केंद्र में अपने साथियों के साथ इस निबंध पर चर्चा कीजिए।

1.4.5 थॉर्स्टीन वैबलेन (1857–1929)

वैबलेन आर्थिक विश्लेषणों को उद्विकास परिदृश्य में संस्थागत आधारों पर पुनर्निर्मित करना चाहता था। इस अर्थ में संस्थागत अर्थशास्त्र दुर्खीम के प्रतिमान से मेल खाता है। यद्यपि इसके सामाजिक व सांस्कृतिक संदर्भ बिल्कुल अलग हैं। वैबलेन ने आर्थिक क्रियाओं के निर्व्यक्तीय सिद्धांत की स्थापना में योगदान दिया था जो ऐतिहासिक अनुभवों से जुड़े अनुसंधान पर आधारित थी। बाजार आधारित उदार पूंजीवाद के सामाजिक प्रभावों वाले अर्थशास्त्र से इसका कोई संबंध नहीं था।

उन्होंने तीन महत्वपूर्ण समस्या क्षेत्रों के तत्वों को प्रस्तुत किया –

- आर्थिक प्रक्रिया के सिद्धांत में अंतर्निहित भी मानव स्वभाव का व्यक्तिवादी विचार।
- पारंपरिक आर्थिक विश्लेषण की स्थिर प्रकृति जिसका ध्यान परिवर्तन की तुलना में समन्वय पर अधिक केन्द्रित रहता है।
- व्यक्तिगत रुचि तथा सामूहिक हित के बीच की कड़ी जो सामाजिक मूल्यों तथा मान्यताओं से निर्देशित होती है।

ऐतिहासिक परिवर्तन संस्थाओं तथा व्यक्तिगत व्यवहार में आये बदलावों पर आधारित होते हैं। परंपरागत आर्थिक सिद्धांत कार्यों में आयी इस विविधता को अच्छी तरह पकड़ नहीं पाए क्योंकि ये व्यक्तिगत प्राथमिकता तथा प्राण ज्ञान व तकनीक की जानकारी के आधार पर काम करते थे। वैबलेन ने नवशास्त्रीय अर्थशास्त्र की स्थिर तथा गैर-ऐतिहासिक प्रकृति को रेखांकित किया। उसके अनुसार पारंपरिक दृष्टिकोण समन्वय की प्रवृत्ति से बंधा था जिसका उद्देश्य ऐसे तरीके तलाशना हुआ करता था जिससे अर्थव्यवस्था स्थिर रहे। यह सोच भौतिक विज्ञानों विशेष रूप से यांत्रिकी से प्रभावित थी। वैबलेन के परिवर्तन के सिद्धांत का एक परिणाम समाजों को सह-अस्तित्व की संभावना थी जिसमें प्रौद्योगिकी तथा संस्थानों के बीच सम्बंध भिन्न प्रकार का था। वैबलेन अवश्य भावी संस्थागत परिवर्तन की प्रक्रिया में विश्वास नहीं रखता था जो प्रौद्योगिकी के प्रचार से पैदा हुए प्रभावों के कारण घटित हो रही थीं

तथा एक खास प्रकार के संस्थागत प्रतिमान की स्थापना की ओर ले जा रही थीं जो आर्थिक व सामाजिक वातावरण द्वारा उत्पन्न समस्याओं से प्रभावी ढंग से निपट सकता था। अपनी अत्यधिक लोकप्रिय पुस्तक "द थ्योरी ऑफ लेबर क्लास (1899) में वैबलेन ने खपत पद्धति के सांस्कृतिक पक्षों की विवेचना की है। उत्पादों की खपत बढ़ाने की इच्छा लोगों को आर्थिक गतिविधि से जुड़ने के पर्याप्त प्रेरणा नहीं दे पाती। आधुनिक समाज में, जहाँ अर्थव्यवस्था निजी आधिपत्य तथा बाजार द्वारा संचालित होती है, खपत की संभावना व्यक्तिगत स्तर पर उत्पन्न की जाती है क्योंकि यह उद्यमियों की प्रतिष्ठा व सामाजिक सम्मान का आधार होती है। प्रत्यक्ष खपत ने युद्ध के साहस व वीरता का स्थान लिया है जो पूर्व युगों में सामाजिक विशिष्टता के चिन्ह माने जाते थे।

1.4.6 टेलकॉट पार्सनस् (1902–1979) तथा नील स्मैल्सर (1930—)

अर्थशास्त्र व समाजशास्त्र के बीच सम्बंधों पर अपने पहले लेखों में टेलकॉट पार्सन ने प्रभावशाली नवशास्त्रीय अर्थशास्त्री लिओनेल रोबिन्स के विचारों से सहमत होते हुए अर्थशास्त्र की वैज्ञानिक स्थिति पर अपने विचार प्रकट किये थे। पार्सन का मुख्य तर्क यह था कि समाजशास्त्र आर्थिक जीवन के संस्थानों की विश्लेषण करता है। अतः वह अर्थव्यवस्था की मुख्य धारा का पूरक तो हो सकता है, उसका विकल्प नहीं हो सकता। पार्सनस् के अनुसार सामाजिक व्यवस्था की उच्च स्तरीय समस्या का समाधान राजनैतिक क्षमता के पास नहीं है क्योंकि वह निजी रुचियों पर नियंत्रण नहीं कर सकती, न ही लोगों के प्राकृतिक व सहज उद्देश्यों से सरोकार रख सकती है। परन्तु सामूहिक लक्ष्यों तथा साझे मूल्यों तक उसकी पहुँच संभव है। क्योंकि आर्थिक नियम व मान्यताएं भौतिक नियमों व मान्यताओं से भिन्न होते हैं। अतः उनमें ठोस वास्तविकता को आंशिक रूप से ही समाहित करने की क्षमता होती है। (पार्सनस्, 1934), दूसरे शब्दों में आर्थिक नियम मानक होते हैं, खास स्थितियों में तार्किक क्रियाओं का प्रतीक होते हैं। उनकी अनुभवजन्य वैधता लक्ष्यों की पूर्ति से संबंधित होती है। इस अर्थ में अर्थशास्त्र पार्सन के अनुसार, वास्तविकता से अलग होता है।

पार्सनस् थार्स्टीन वैबलेन के संस्थागत अर्थशास्त्र का घोर विरोधी था। पार्सनस् दो मामलों में संस्थागत अर्थशास्त्र से अपने ऐतराज दर्ज करता है। पहला, संस्थागत अर्थशास्त्र की सिद्धांत विरोधी प्रकृति। सामान्यीकृत उग्र अनुभववाद के नाम पर संस्थागत अर्थशास्त्र विश्लेषणात्मक सार ग्रहण की वैधता से इनकार करता है। दूसरे, प्रौद्योगिकी को संस्थान के रूप में मानने पर जोर देने की प्रवृत्ति तथा सांस्कृतिक मानकों को अस्वीकार करने की प्रवृत्ति (पार्सनस्, 1976–179)।

उसकी दृष्टि में सबसे महत्वपूर्ण सीमा थी, लक्ष्यों को शामिल नहीं करना। इसमें लक्ष्यों की जांच-पड़ताल का काम शामिल नहीं है जो निश्चित रूप से व्यक्तिवाद की ओर ले जाता है। यह पहले से ही मानकर चला जाता है कि व्यक्ति अपने लक्ष्य स्वतंत्रता पूर्वक आपसी संपर्कों से स्वयं परिभाषित करते हैं। इस बिन्दु पर एक गंभीर समस्या उत्पन्न होती है – यह सोचने के पीछे कोई कारण नहीं होता कि व्यक्तियों के अंतिम लक्ष्य आपसे एक दूसरे से जुड़े होते हैं। यदि विभिन्न व्यक्तियों के लक्ष्यों के बीच सहयोग एकीकरण के लिए कोई मौजूद नहीं होता तो समाज का खतरा उठाना एक विवाद मात्र बनकर रह जाता है तथा व्यक्तियों के बीच प्रतियोगिता की स्थिति बनी रह जाती है।

अपनी पुस्तक “द इकॉनोमी एण्ड सोसाइटी” (1956) में पार्सन्स और स्मैल्सर ने सुझाव दिया है कि समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र दोनों को सामाजिक प्रणालियों के सामान्य सिद्धांत के एक हिस्से के रूप में समझा जा सकता है। अर्थव्यवस्था एक सह-प्रणाली है जिसके अन्य तीन सह-प्रणालियों (राजनीति, एकीकृत सह-प्रणाली तथा सांस्कृतिक अभिप्रेरक सह प्रणाली) के साथ अंतर्सम्बन्ध हैं। सह प्रणाली की अवधारणा वेबर के क्षेत्र की धारणा की तरह है जबकि दूसरी का सम्बंध केवल मूल्यों से है, आर्थिक सह प्रणाली अनुकूली कार्य करती है तथा वह क सुस्पष्ट संस्थागत संरचना भी है। अंत में यह कहा जा सकता है कि अर्थव्यवस्था तथा समाज दोनों को अर्थशास्त्रियों ने नकारात्मक रूप से स्वीकार किया। इसलिए वे आर्थिक, समाजशास्त्र में समाजशास्त्रियों की रुचि पैदा नहीं कर पाये। अगले दशक में स्मैलर के आर्थिक समाजशास्त्र को संघटित करने का प्रयासों ने आर्थिक समाजशास्त्र को उप-क्षेत्र के रूप में स्थापित किया। अनेक विज्ञानों ने इसे मान्यता संदर्भ की तथा कालेजों तथा विश्वविद्यालयों ने अपने पाठ्यक्रम में इसे एक विषय के रूप में स्वीकार किया। परन्तु अनुसंधान की नई सूचियों में इसे स्पष्ट रूप से स्वीकृति नहीं दिला पाये। स्मैल्सर ने आर्थिक समाजशास्त्र को व्याख्या सामाजिक संदर्भों के ढांचों, विविधताओं तथा व्याख्या प्रतिमानों के रूप में किया है जिसमें उत्पादन सम्बंधी गतिविधियों की जटिलताएं, विवरण, आदान-प्रदान तथा उत्पादों व सेवाओं की खपत आदि शामिल हैं। आर्थिक प्रायः दो प्रकार के प्रश्न उठाते रहे हैं – पहला है सूक्ष्म तथा आर्थिक गतिविधियों के संदर्भ। आर्थिक समाजशास्त्री पूछते हैं कि गतिविधियों को भूमिकाओं के रूपों में तथा सामूहिकता में किस प्रकार ढाला जाता है। किन मूल्यों के आधार पर उन्हें वैध ठहराया जाता है। किस मान्यताओं तथा प्रतिबंधों से उन पर नियंत्रण रखा जाता है।

आर्थिक संस्थानों में, जैसे व्यापार निकायों में स्मैल्सर ने स्तर प्रणाली का अध्ययन किया, तथा अधिकरणों के बीच सम्बंधों, विचलनों तथा गुटों तथा गठबंधनों का अध्ययन किया, क्योंकि ये व्यापारिक संस्थानों की आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित करते हैं। दूसरे प्रकार का प्रश्न व्यापकता से संबंधित है तथा इसका सरोकार उन सामाजिक अस्थिरताओं से है जो आर्थिक संदर्भों में देखने को मिलती हैं तथा सामाजिक अस्थिरताओं से है जो गैर-आर्थिक संदर्भों में घटित होती रहती हैं। उदाहरण के लिए तरह-तरह के राजनैतिक विवाद विभिन्न समाजों में आर्थिक व्यवस्थाओं द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं तथा अनेक प्रकार की वर्ग प्रणालियाँ विभिन्न आर्थिक व्यवस्थाओं में उभर कर सामने आती हैं।

बोध प्रश्न 2

1) आर्थिक समाजशास्त्र किसे कहते हैं? आठ पंक्तियों में व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

- 2) धन की अर्थव्यवस्था के बारे में सीमेल के क्या विचार हैं? पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....
.....
.....
.....
.....

- 3) स्मेलसर ने आर्थिक समाजशास्त्र को कैसे परिभाषित किया है? पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिये।

.....
.....
.....
.....
.....

1.5 आर्थिक विकास : समस्याएं तथा विरोध

पश्चिमी देशों में आधुनिकीकरण का अभ्युदय हुआ। 1950 के बाद इसने शैक्षणिक तथा नीतिगत तरीके से अपने वर्चस्व का विस्तार करना आरंभ कर दिया। इसके मुख्य सिद्धांत जैसे-जैसे समाज पारंपरिक अवस्थाओं से निकलकर औद्योगिक अवस्था में पहुँचे और विकसित अवस्था में प्राप्त हुए, जिसमें उच्च स्तरीय आर्थिक विकास, व्यापार तथा विदेशी निवेश शामिल है तथा पश्चिमी समाजों की नीतियाँ शामिल हैं। आधुनिकीकरण की रफ्तार बढ़ती गई। अर्थशास्त्रियों ने औपचारिक प्रतिमान विकसित किए, पूंजी सकलन पर जोर दिया, बचत प्रौद्योगिकी में परिवर्तन औद्योगिकीकरण पर जोर दिया तथा राज्यों की गतिविधियों को निर्देशित किया। अन्य विषयों में अपनी विषय-वस्तु का चयन किया। समाजशास्त्रियों तथा नृविज्ञानियों ने विकास तथा विशिष्ट संस्थागत परिवर्तनों तथा विकास सम्बंधी बाधाओं, पारंपरिक सांस्कृतिक तथा संरचनात्मक बाधाओं पर विशेष रूप से ध्यान दिया। साथ ही उन्होंने विशिष्ट संस्थागत परिवर्तनों (स्तरीकरण प्रणालियों, नातेदारी, सामुदायिक तथा धर्म आदि) पर विशेष ध्यान दिया जो विकास के साथ-साथ होते रहते हैं। राजनीति विज्ञानियों ने जनजाति तथा साम्प्रदायिक तथा स्थानीय राजनैतिक प्रणालियों के दलीय, हित समूहों तथा आधुनिक राजनैतिक संस्थानों में बढ़ती रुचियों पर विशेष रूप से ध्यान दिया।

बॉक्स 1.1 आयोजित तथा गैर आयोजित क्षेत्र

अब हम अपना ध्यान औद्योगिक नीति की व्याख्या से हटाकर नगरीय उद्योगों की संरचनात्मक स्वरूपों तथा संगठनों से संबंधित समस्याओं पर केन्द्रित करेंगे।

भारत की नगरीय अर्थव्यवस्था में दो तरह के क्षेत्र आते हैं – औपचारिक क्षेत्र तथा अनौपचारिक क्षेत्र। औपचारिक क्षेत्र में बड़े स्तर पर चलने वाले उद्योग आते हैं, जिनमें बड़ी पूंजी लगी होती है तथा बड़ी संख्या में श्रमिक काम करते हैं, आधुनिक तथा

विकसित प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल होता है और सरकार तथा निजी क्षेत्रों की साझेदारी होती है। श्रमिकों तथा उत्पादों के बारे में सुव्यवस्थित एवं सुरक्षित बाजार होते हैं। रोजगार की प्रकृति औपचारिक होती है तथा प्रशिक्षित एवं सुशिक्षित योग्य कर्मचारियों को काम दिया जाता है।

दूसरी ओर अनौपचारिक क्षेत्र के उद्योग छोटे स्तर पर चलाये जाते हैं उनमें कम पूंजी लगाई जाती है तथा कम संख्या में कर्मचारी काम करते हैं और निजी अथवा परिवारों की भागीदारी से काम चलाया जाता है। साधारण प्रौद्योगिकी अव्यवस्थित बाजार, असुरक्षित श्रमिक तथा इन्हें चलाना आसान होता है क्योंकि इनमें से अधिकतर उद्योगों के लिये लाइसेंस या रजिस्ट्रेशन भी जरूरी नहीं होते (सत्या राजू, 1989:12-13, अजीज 1984 : 6-8)।

औपचारिक क्षेत्र में काम करने वाले कर्मचारियों को नियमित वेतन दिया जाता है जबकि अनौपचारिक क्षेत्र के उद्योगों में अधिकतर लोगों को नियमित वेतन नहीं दिया जाता, परंतु कुछ कर्मचारी नियमित वेतन भी पाते हैं। उत्पादन तथा मरम्मत, निर्माणकारी, व्यापार, यातायात तथा घरेलू सेवाओं आदि में कर्मचारियों को वेतन दिया जाता है। निजी उद्यमों में स्वरोजगार योजनायें आती हैं जैसे फेरीवाले, पटरी वाले, ठेलागाड़ी चलाने वाले तथा रिक्शा चलाने वाले आदि लोग आते हैं।

भारत में सरकार ने देश की अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन देने के लिये प्रमुख रूप से औपचारिक क्षेत्र के उद्यमों पर विशेष ध्यान दिया है। अब हम नं.1 उत्पादन पद्धतियों तथा नं. 2 लघु उद्योगों पर विचार करेंगे।

ईएसओ 12 : भारत में समाज

भारत में आश्रितता का सिद्धांत तथा विश्व प्रणाली सिद्धांत महत्वपूर्ण मिसालों के रूप में सामने आये हैं। 1960 के दशक में आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति की आलोचना होती थी और इसलिए वह तेजी से गति नहीं पकड़ पाई थी। विभिन्न समाजों में सांस्कृतिक कारणों से आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को आत्मसात नहीं किया जा पा रहा था। विद्वानों ने इस विचार को चुनौती दी कि पारंपरिक समाजों में स्थिरता होती है तथा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया अपनाई गई तो परम्परायें नष्ट हो जायेंगी। आर्थिक इतिहासकारों तथा अन्य विचारकों ने अभिसरण के विचार की कटु आलोचना की तथा विभिन्न औद्योगिक विकासों की पहचान की। सबसे ज्यादा मौलिक आक्षेप लाटिन अमेरिका तथा बाद में अफ्रीका के विद्वानों की ओर से आया।

1950 के दशक में कुछ लोगों ने यह शिकायत की थी कि आधुनिकीकरण अंतरराष्ट्रीय आयामों की उपेक्षा कर रहा है। खासकर विकसित देश अपने पास चारों ओर स्थित विकासशील व पिछड़े देशों की उपेक्षा कर रहे हैं। (प्रेबिश, 1950) यह भावना एक दशक के अंदर बढ़ती गई और यह माना जाने लगा कि विकसित देश आधुनिकता के साथ उपकरण से गैर विकसित देशों पर अपना आधिपत्य बनाये रखना चाहते हैं तथा वे न केवल विकास की गति को अवरुद्ध कर रहे हैं, अपितु कम विकसित देशों से अपने संबंधों को बिगाड़ रहे हैं।

आश्रितता के सिद्धांत में विश्वास रखने वाले विचारकों ने प्रतिस्थापन के आयात पर तथा प्रतियोगिता आधारित औद्योगिकीकरण पर जोर दिया जिससे निर्भरता की रणनीतियों को भेदते हुए स्वतंत्र अस्तित्व के रास्ते तलाशे जा सकें। आश्रितता के सिद्धांत के अति

उग्र तथा कम उग्र स्वरूप अवतरित हुए और अंतर्राष्ट्रीय राजनैतिक व आर्थिक वर्चस्व वाली समानान्तर वैश्विक प्रणालियों के दबाव के जवाब में मार्क्स व लैनिन जैसे साम्यवादियों से साम्राज्यवाद विरोधी विचारों की प्रतिध्वनियाँ 1960 तथा 1970 के दशकों में सुनाई देने लगी। आश्रितता के सिद्धांत को बुरे वक्त का सामना करना पड़ा कर लेने की प्रवृत्ति से संचालित विकसित देश की रणनीति दबाव बनाने तथा हस्तक्षेप करने की थी। दक्षिण कोरिया, ताइवान, सिंगापुर तथा हॉकॉंग आदि एशियन देश विकास के प्रतिमानों के रूप में उभरे तथा विकासशील देश व्यापार वित्तीय संदर्भ तथा प्रशासनिक मामलों में विकसित देशों के साथ साझेदारी के लिए उत्सुक दिखे।

1.6 वाशिंगटन सहमति

1980 के आरंभ में विकासात्मक अर्थशास्त्र की आरे से प्रतिक्रांति के स्वर उभरे जो आर्थिक परंपरागत की प्रवृत्ति के परिचायक थे। इसे वाशिंगटन सहमति के रूप में जाना गया। अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र संस्थान से जुड़े महान विद्वान जॉन विलियमसन ने 'वाशिंगटन सहमति' को प्रस्तावित किया। विश्व बैंक तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने इसे मान्यता प्रदान की। महान विद्वान फ्रीडरिच हेयक तथा मिल्टन फ्रीडमैन से इसकी निष्पादित हुई थी तथा माग्रेट थैचर और रोनाल्ड रीगन प्रशासनों ने इससे सहमति जताई थी। 1980 के दशक आरंभिक दिनों में उत्पन्न हुए वित्तीय संकट में सबक लेते हुए इस विचार को आगे बढ़ाया गया था। तीसरी दुनिया के देशों को आर्थिक सहायता देने के उद्देश्य से यह विकल्प तैयार किया गया था। सार्वजनिक सूची में राजवित्तीय नियंत्रण द्वारा कमी लाई गई प्रोत्साहन देने के लिए करों में संशोधन किये गये, बाजार आधारित ब्याज दरें निर्धारित की गई व्यापार की शर्तों का उदासीकरण किया गया। लेने-देने की दरों में प्रतियोगिता लाई गई, निजीकरण किया गया, शर्तों व नियमों में ढील दी गई, सम्पत्ति के अधिकारों का संरक्षण किया गया। नव-उदारता की सोच ने मार्क्सवादी विचारों तथा साम्यवादी राजनैतिक प्रणालियों के प्रति झुकाव की प्रवृत्ति को वैकल्पिक आधार प्रदान किया। सबसे पहले पूर्वी यूरोप में, फिर पश्चिमी यूरोप में फिर संयुक्त राज्य अमेरिका में साम्यवाद के प्रति बढ़ते रुझानों को रोकने के वैकल्पिक प्रयास किये गए। 1989-90 में इन वामपंथी प्रणालियों के ध्वस्त होने से पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था को प्रोत्साहन मिलने लगा। पश्चिमी पूंजीवादी विचारधारा थी धुर विरोधी साम्यवादी विचारधारा के तिरोहित हो जाने से पश्चिमी पूंजीवादी सोच व्यापक रूप से स्थान पा गई। अब पश्चिमी अर्थशास्त्री तथा नीति निर्धारक इन क्षेत्रों में पूंजीवादी विकास को बढ़ावा देने के लिए तेजी से आगे आए। अब तक वैश्वीकरण का दौर शुरू हो चुका था, उसके सहयोग से पूंजीवाद बिना वैचारिक तथा राजनैतिक चुनौतियों पूंजीवाद पूरी दुनिया में छा गया (कुर्थ, 2001)। वाशिंगटन सहमति को रेखांकित करते हुए सब शास्त्रीय आर्थिक सिद्धांत सभी अर्थ व्यवस्था में अपने लिए स्थान बनाने लगा। इसके लिए किसी बड़े परिवर्तन की अथवा प्रयास की जरूरत नहीं थी। तर्कसंगतता, प्रोत्साहन, शिथिलता तथा निजीकरण तथा राज्य-विरोधी होने पर दंडविधान जो बाजार व्यवस्था बिना किसी व्यवधान के पूरा कर सकती है। आर्थिक नीतियां नव-उदारवाद के साथ मिलकर संरचनात्मक समायोजन नीतियां (एसएपी) का निर्माण करती हैं। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना ऋण लेने वाले देशों पर नियंत्रण रखने के लिए ऋणवापसी की शर्तें तय करने आदि कार्यों को केंद्र में रखकर की गई थी। 1980 में जब भारत आर्थिक कठिनाइयों से जूझ रहा था और उसे आर्थिक सहयोग की आवश्यकता थी, तब एसएपी के अंतर्गत भारत से विदेशी आर्थिक सहयोग

प्राप्त किया था। ऋण लेने वाले देशों को जो सुझाव दिये जाते हैं, उनमें सरकारी खर्चा में कमी करना, अर्थव्यवस्था में राज्य के हस्तक्षेपों को सीमित करना, व्यापार की नीतियों को उदार बनाना, आदि शामिल था। व्यवहार में ऐसी अनेक नीतियां दंडात्मक थीं। वेतन रोकना, मुद्रा की कीमत कम करना, श्रम कानून लागू करने, तथा मजदूर यूनियन को काम करने से रोकना तथा मजदूर वर्ग को सामूहिक रूप से संगठित होने से रोकना आदि स्थितियों में इन नीतियों का उपयोग किया जाता था।

बोध प्रश्न 3

1) 'वाशिंगटन सहमति' से आपका क्या अभिप्राय है? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

1.7 सारांश

इस इकाई में हमने समाजशास्त्र के सहयोगी विषय के रूप में आर्थिक समाजशास्त्र के विकास पर प्रकाश डाला। आर्थिक समाजशास्त्र के विकास पर प्रकाश डाला। आर्थिक समाजशास्त्र के आरंभिक वर्षों में मार्क्स, वेबर, दुर्खीम, सीमेल तथा वेबलेन के आर्थिक सिद्धांतों के आधार पर समाजशास्त्र के उत्पादन सम्बंधों पहलुओं पर विचार किया गया। यद्यपि आर्थिक जीवन की व्याख्या सामाजिक संरचना के आधार पर की गई जिसमें अर्थशास्त्र की विशेष भूमिका दिखाई पड़ती है। जेम्स ड्यूसेनबरी का यह कथन – “जब अर्थशास्त्र लोगों की पसंदों पर छाया रहता है, तो लोग अपनी प्राथमिकता कैसे तय कर सकते हैं, जब समाजशास्त्र छाया रहता है, तब लोग अपनी पसंद का स्पष्टीकरण क्यों नहीं करते। इसका खुलासा उच्च स्तरीय सैद्धांतिक वाद-विवादों द्वारा दोनों विषयों अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र के बारे में की गई है। इन उच्च स्तरीय सिद्धांतकारों के प्रयासों के बावजूद आर्थिक समाजशास्त्र को अनुभवों पर आधारित नई दिशाओं में प्रसार के लिए 1950 तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। इससे पहले अर्थशास्त्र व समाजशास्त्र को एक दूसरे का पूरक माना जाता था। समाजशास्त्री अब अर्थशास्त्र की सीमाओं का उल्लंघन करने का हौंसला दिखा रहे हैं तथा अर्थशास्त्रियों के क्षेत्र पर महत्वपूर्ण सवाल खड़े कर रहे हैं।

1.8 संदर्भ

‘द डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी’ ऐमाइल दुर्खीम, 1964 : न्यूयार्क: फ्री प्रैस।

केपिटल : ए क्रिटिक ऑफ पॉलिटिकल इकॉनोमी – कार्ल मार्क्स, 1967 : न्यूयार्क : इंटरनेशनल पब्लिशर्स।

‘इकॉनोमी एण्ड सोसाइटी : ‘ए स्टडी इन द इंटरैक्शन ऑफ इकॉनोमिक एण्ड सोशल थ्योरी – टेलकॉट पारसनस एण्ड नील स्मैल्सर, 1956 : न्यूयार्क: फ्री प्रैस।

द फिलॉसफी ऑफ मनी – जॉर्ज सीमेल, 1990 – लंदन: रूटलैज।

द प्रोस्टेंट एथिक एण्ड द स्पिरिट ऑफ केपिटलिज्म – मेक्स वेबर, 1976 – चार्ल्स
स्क्रिबनर्स सन्स, न्यूयार्क।

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1) अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र दोनों एक दूसरे के सहयोगी तथा संपूरक हैं जिनका कार्यक्षेत्र समाज है। आपस में प्रतियोगिता नहीं हैं ये एक दूसरे के स्थानापन्न भी नहीं हैं।
- 2) उच्च स्तरीय विचारक ऐमाइल दुर्खीम सामाजिक सत्त्यों का तथा सामूहिक चेतना के पारस्परिक सम्बंधों का अध्ययन करते हैं। ऐमाइल दुर्खीम के रुचि आधुनिक समाजों तथा सामाजिक अखंडता व समाजों के जटिल समाजों में परिवर्तित होने की प्रक्रियाओं के अध्ययन में थी।

बोध प्रश्न 2

- 1) आर्थिक समाजशास्त्र एक ऐसा क्षेत्र है तथा अनुसंधान का विषय है जिसका प्रयास मनुष्य के सामाजिक व्यवहार तथा समाज के आर्थिक व सांस्कृतिक पहलुओं के बीच सम्बंधों की स्थापना करना होता है। समाज विज्ञानी एडम स्मिथ व अन्य शुद्ध अर्थशास्त्रियों के विपरीत विश्वास रखते थे कि सामाजिक व सांस्कृतिक संदर्भों के अंतर्गत ही व्यक्ति काम करते हैं। इसीलिए उनके सामाजिक कार्य विभिन्न सांस्कृतिक संदर्भों में अलग-अलग होते हैं।
- 2) सीमेल ने अपनी पुस्तक 'द फिलॉसफी ऑफ मनी' (1900) में विश्वास व्यक्त किया है कि समकालीन पूंजीवादी समाजों में धन एक बड़ा संस्थान है। आधुनिक समाजों के लोगों के जीवन में धन का विशेष महत्व है। समाजों में धन का संस्थान लोगों को धन एकत्रित करने विश्वास तथा स्थिरता की स्थिति में विभिन्न सांस्कृतियों वाले समाजों में संस्थान की तरह धन का निवेश करने तथा उसका आदान-प्रदान करने की शक्ति प्रदान करता है। इस प्रकार यह एक सार्वजनिक संस्थान बन जाता है।
- 3) सीमेल आर्थिक समाजशास्त्र की व्याख्या संदर्भों के स्वरूप तथा वितरण तथा आदान-प्रदान तथा वस्तुओं तथा सेवाओं की खपत से सम्बंधित होती है।

बोध प्रश्न 3

- 1) 'वाशिंगटन कंसेंसस' का अर्थ है 1980 के प्रतिक्रांति का उदय जो 1980 के दशक के आरंभिक दौर में विकासात्मक अर्थशास्त्र के संदर्भ में अस्तित्व में आई। इसे वाशिंगटन कंसेंसस की संज्ञा इंस्टीट्यूट फॉर इंटरनेशनल इकॉनॉमी से जुड़े महान विद्वान जॉन विलिंगसन ने दी थी तथा 'विश्व बैंक' व 'अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष' ने इसे मान्यता प्रदान की थी और लागू किया था।